द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास ५

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

२. अजित-शांति स्तव (चालु)

चित्तलेहा (चित्रलेखा) छंद

इक्खागविदेहनरीसर, नरवसहा मुणिवसहा;
नवसारय ससिसकलाणण, विगयतमा विहुयरया.
अजिउत्तम तेअगुणेहिं महामुणि, अमिअबला विउलकुला;
पणमामि ते भवभयमूरण, जगसरणा मम सरणं. चित्तलेहा . १३

नारायओ (नाराचक्र) छंद

देवदाणविंद चंदसूरवंद हट्ठतुट्ठ जिट्ठ परम;
लट्ठरुव धंतरुप्प पट्टसेय सुद्धनिद्ध धवल.

दंतपंति संति सत्ति कित्ति मुत्ति जुत्ति गुत्तिपवर;
दित्ततेअ वंदधेअ सव्वलोअ,
भाविअ प्पभावणेअ पइसमे समाहिं. नारायओ.....१४

-: शब्दार्थ :-

इक्खाग - हे इश्वाकु वंश में उत्पन्न हुए
विदेह नरीसर - हे विदेह नरेश
नरवसहा - मनुष्यो में श्रेष्ठ
मुणिवसहा - मुनियों में श्रेष्ठ
नव - नया
सारय - शरद ऋतु के
ससिसकल - पूर्ण चंद्र जैसे
आणण - मुखवाले
विगयतमा - जिनका अज्ञान रुप अंधकार गया है ऐसै
विहुय रया - कर्मरुप रज जिन्होंने दूर की है
अजिअ - न जीते जाय ऐसे
उत्तम - उत्तम
तेअगुणेंहिं - उन्हीं गुणो द्वारा
महा मुणि - महा मुनिओ से
अमिअबला - जिनका बल मापा नहीं जाये ऐसे
विउलकुला - हे विशाल कुलवाले
पणमामि - मै प्रणाम करता हूँ
ते - तुम्हारा
भवभयभूरण - हे संसार के भय को तोडने वाले
जगसरणा - जगत को शरणरुप
मम - मेरे
सरण - शरण
देवदाणविंद - वैमानिक तथा भवनपति देवों के इंद्रो
चंदसूर - चंद्र तथा सूर्य
वंद - वंदन करने योग्य
हट्ठ - आरोग्य वाला
तुट्ठ - संतोष वाला
जिट्ठ - ज्येष्ठ / प्रशंसा करने योग्य
परम लट्ठरुव - अति सुंदर रुप वाले
धंतरुप्प - तपाई हुई चांदी के
पट्ट - पाटे जैसी
सेय - श्रेष्ठ
सुद्ध - निर्मल
निद्ध - स्निग्ध
धवल - सफेद
दंतपंति - दांतो की पंक्तिवाले
संति - शांति
सत्ति - शक्ति
कित्ति - कीर्ति
मुत्ति - निर्लोभतता
जुत्ति - युक्ति / न्यायी वचन
गुत्ति - तीन प्रकार की गुप्ति
पवर - उससे भी श्रेष्ठ
दित्तत्त - प्रदीप्त तेजवाला
वंदधेय - वंदन करने योग्य पुरुषों को ध्यान करने योग्य
सव्वलोअ - सर्व लोक को
भाविअ - भावित किये
प्पभावणेअ - प्रभाव से जानने योग्य
पइस - आपो
मे - मुझे
समाहिं - समाधि

गाथार्थ : इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए इससे, हे इक्ष्वाक ! हे विदेह देश के राजा, हे मनुष्यो में श्रेष्ठ ! हे मुनिओं

में श्रेष्ठ, हे शरद ऋतु के नये पूर्ण चंद्र जैसे मुखवाले ! हे अज्ञानरुप अंधकार से रहित ! हे कर्मरुप रज को दूर करने वाले ! रागादि से नहीं जीते गये इसलिये हे अजित ! हे गुणो से उत्तम महामुनि ! मापा न जाये बल जिनका इसलिये महामुन्यमितबल ! हे विशाल कुल वाले ! हे संसार के भय को दूर करने वाले ! हे जगत के शरणरुप ! तुम्हें मैं नमस्कार करता हुं । आप मेरे शरुणरुप बनो.....१३

वैमानिक और भुवनपति देवता के इंद्रो द्वारा, चंद्र और सूर्य के द्वारा के वंदन करने योग्य, आरोग्यवान, संतोषी ज्येष्ठ, अतिशय प्रशंसा करने योग्य सुंदर रुपवाले, तपाई हुई चांदी के पाटे जैसी श्रेष्ठ, निर्मल, स्निग्ध और धवल दांत की पंक्ति है जिनकी, शांति, शक्ति, मुक्ति, युक्ति, तीन प्रकार की गुप्ति से श्रेष्ठ तेजवाले, सर्व लोक को भावित किये प्रभाव से जानने योग्य ऐसे हे शांतिजिन ! आप मुझे समाधी दो.....१४

कुसुमलया (कुसुमलता) छंद

विमलससिकलाईरेअ सोमं, वितिमिरसूर कराईरेअतेअं;
तिअसवईगणाईरेअरूवं, धरणिधरप्पवराईरेअसारं. कुसुमलया....१५

भुअगपरिरिंगअं (भुजगपरिरिंगित) छंद

सत्तेअ सया अजिअं, सारीरे अबले अजिअं;
तवसंजेम अ अजिअं,
अेस अहंथुणामि जिणं अजियं. भुअगपरिरिंगगिअं.....१६

खिज्जिअयं (निज्जिंतक) छंद

सोमगुणेहिं पावई न तं, नवसरयससी,
तेअगुणेहिं पावई न तं, नवसरयरवी;
रूवगुणेहिं पावई न तं, तिअसगणवई,
सारगुणेहिं पावई न तं, धरणिधरवई, खिज्जिंअयं.....१७

-: शब्दार्थ :-

विमल - निर्मल
ससिकला - चंद्रकला से
अईरेअ - ज्यादा
सोमं - सौम्यतावाला
वितिमिर - मेघ का अंधकार रहित
सूरकरा - सूर्य की किरणो से
अइरेअतेअं - अधिक तेजवाला
तिअसवइ - देवताओ के पति इद्रों के
गण - समूह से
अइरेअरूवं - अधिक रुपवाला
धरणिधर - पर्वतो में
बले - बल में
तवसंजमे - तप और संयम में
अेस अहं - ये मैं
थुणामि - स्तुति करता हूँ
जिणंअजियं - अजित जिन भगवान को
सोमगुणेहिं - सौम्यगुणो से
पावइ न तं - वह अजितनाथ भ. को पा सकता नहीं
नव - नवीन
सरयससी - शरद ऋतु का चंद्र
तेअगुणेहिं - तेज के गुणों से

प्पवर - श्रेष्ठ मेरु पर्वत से
अइरेअसारं - अधिक सारवाला
सत्ते - सत्व में
सया - निरंतर
अजिअं - नहीं जीते गये
सारीरे - शरीर के
रवि - सूर्य
रुवगुणेहिं - रुप के गुणो से
तिअसगणवई - देवता के गण के पति इंद्र
सारगुणेहिं - स्थिरता के गुण से
धरणिधर वई - पर्वतों का पति मेरु पर्वत

गाथार्थ : निर्मल चंद्र की कला से अधिक सौम्य गुणवाले, बादलो (मेघ) के अंधकार बगैर के सूर्य किरणों से अधिक तेजवाले, देवता के पति इंद्र के समुह से अधिक रुपवाले, पर्वतों में श्रेष्ठ ऐसे मेरु पर्वत से अधिक स्थिरता वाले, सत्व में निरंतर किसी से भी न जीते गये, शरीर के बल में किसी से भी न जीते गये और तप सयंम में भी न जीते गये ऐसे अजितनाथ भगवान की स्तुति करता हूँ। १५-१६

सौम्यता के गुणो से नवीन शरद ऋतु का चंद्र भी उन्हें पा सकता नहीं, तेज के गुणो से नवीन शरद ऋतु का सूर्य भी उन्हें पा सकता नहीं, रुप के गुणो से देवता के पति इन्द्र भी उन्हें पा सकता नहीं और स्थिरता के गुणो से पर्वतों का पति मेरु पर्वत उन्हें पा सकता नहीं.

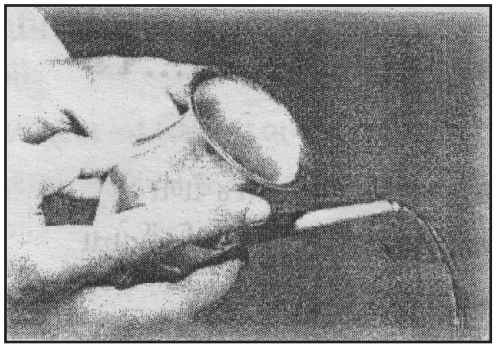

जल पूजा

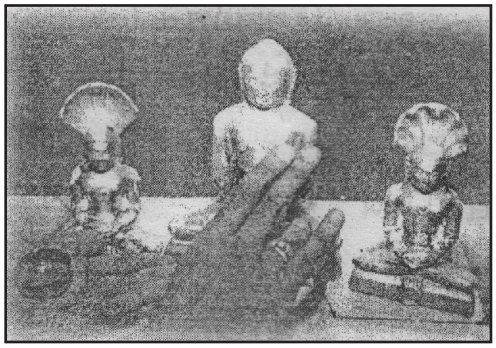

चंदन पूजा

श्रीगणधरवाद

२) श्री अग्निभूति गौतम

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व आर्यावर्त भारतभूमि के मगधदेश के समीप में कोल्लाग सन्निवेश गांव विद्या का धाम माना जाता था, बडे-बडे विद्वान इस गांव में बसते थे, ब्राह्मणों का आधिपत्य था । भारद्वाज गोत्र के एक विद्वान ब्राह्मण धनमित्र की धर्मपत्नी वारुणी देवी की कुक्षी में एक बालक आया । माता ने गर्भ से ही विद्या के उत्तम संस्कार मिले इस बात का ध्यान रखा और योग्य समय पर श्रवण नक्षत्र में बालक को जन्म दिया, व्यक्तकुमार ऐसा उसका नामकरण करने में आया, उनका पूरा नाम श्रीव्यक्त धनमित्र भारद्वाज था ।

सोलह कलाओं से खिलते चंद्र की तरह बालक बडा हुआ, पिता ने विद्वानों के पास पढाकर विद्वान बनाया । व्यक्त एक विद्वान अध्यापक के रुप में प्रसिद्ध हुए, वेद-वेदान्त में पारंगत एवं कर्मकांडी पंडित के रुप में उनकी प्रसिद्धि हुई । अध्यापन के व्यवसाय में उनके ५०० शिष्य तैयार हुए थे, द्विजसमाज में उनकी यशकीर्ति बहुत अच्छी फैली हुई थी ।

वेद-वेदान्तो का अध्ययन करते इन पंडित श्रीव्यक्त को ऐसा लगा कि **''ब्रह्मसत्यं जगत् - मिथ्या'', ''स्वप्नोपमं वै-जगत् ''** अर्थात जगत तो मिथ्या है, स्वप्न के जैसा यह संसार है, इंद्रजाल जैसा सारा रुप है तो फिर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश यह जो पंचमहाभूतो से संसार बना है, तो क्या यह बात झूठी है ? परस्पर विरोधाभासी इन बातों से व्यक्त पंडित के मन में ऐसी शंका घर कर गयी कि पंचभूत है या नहीं ? और उन्होंने अपने मन में निर्धार कर लिया कि स्वप्न जैसे इस संसार में, इन्द्रजाल जैसे मायावी संसार में पंचभूत जैसा कुछ है ही नहीं ।

योगानुयोग श्रीव्यक्त पंडित का भी अपने ५०० शिष्य परिवार के साथ अपापापुरी में सोमिल ब्राह्मण के यज्ञ में पधारने का हुआ और यज्ञ के अवसर पर अपने आगे के पंडितो को समवसरण में जाते जानकर वे भी वहां पहुंचे । व्यक्त पंडित अपने पांच सौ विद्यार्थी शिष्य परिवार के साथ प्रभु के पास संशय पूछने आये, तब प्रभु ने कहा कि, ''हे व्यक्त ! तुझे पंचभूतो के विषय में वेदपदो से शंका हुई है, वो तेरी शंका अयोग्य है कारण कि, **''येन स्वप्नो पंचवैसकलं इत्येष ब्रह्माविधिरंजस्त विज्ञेय :''** इस पद का अर्थ तू ऐसा समझता है कि पंचभूत जैसी कोई वस्तु ही इस जगत में नहीं है, इस जगत में सबकुछ स्वप्न समान ही है । इस पद में जो सब स्वप्नमय है, ऐसा

बताया गया है उसका अर्थ आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये स्त्री, पुत्र, कुटुंब, परिवार, धनसम्पत्ति वगैरह स्वप्न में मिलने जैसी है, इन वस्तुओं पर आसक्ति करने जैसी नहीं है । यह आत्मा इन सारी वस्तुओं को स्थिर और खुद की मान इन्हैं पाने का प्रयत्न करते हुए बहुत ही दुःखी हो गयी है । अनंत आत्मा को दुःख मुक्त होना हो तो इन वस्तुओं को स्वप्न समान समझ उनके उपर की असक्ति छोड आत्मा को मोक्ष के लिये प्रयत्न करना चाहिये, इस तरह का ही इन वेदपदोका सत्य अर्थ है, परंतु ये वेदपद भूतो के अभाव को सूचित नहीं करते कारण कि **''पृथ्वी देवता अपो देवता''** इत्यादि वेदपदो से भूतो की सत्ता ही दर्शायी गयी है । वीर प्रभु के वचनो से व्यक्त का संदेह दूर हो गया और वे प्रभु के चरणों में झुक पडे एवं अपने पांच सौ विद्यार्थी शिष्यो के साथ दीक्षा लेकर प्रभु के शिष्य हुए फिर तुरंत प्रभु के पास से त्रिपदी प्राप्त कर उन्होने द्वादशांगी की रचना की ।

ज्ञानी-महाज्ञानी के चरणों में जीवन समर्पित कर वे भी ५०० शिष्यों के साथ ५० वर्ष की उम्र में संसार छोड दीक्षा लेकर सच्चे अणगार बने । स्यादवाद का सिद्धांत समझे, त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना की और भगवान श्रीमहावीर के श्रमणसंघ में चौथे गणधर के रुप में अद्‌भुत मान प्राप्त किया ।

चौथे आरे में जन्मे हुए तथा तद्‌भवमोक्षगामी आत्मा ऐसे श्री व्यक्तस्वामी वज्रऋषभनाराच संघयण एवं समचतुरस्त्र संस्थान युक्त उत्तम शरीर धारण करते थे । ५० वर्ष गृहस्थाश्रम में बीताने के बाद उन्होंने ३० वर्ष तक का कुल चारित्र पर्याय का पालन किया । ३० वर्ष के चारित्रकाल में १२ वर्ष तक छद्मस्थ रहकर उम्र के ६२ वें वर्ष में और चारित्र लेने के बाद १२ वें वर्ष में वे भगवान महावीर की हाजिरी में ही चार घनघाती कर्मो को क्षय करके केवलज्ञानी - केवलदर्शी बने । १२ वर्ष तक सर्वज्ञ-सर्वदर्शी के रुप में इस धरती को पावन कर अनेक भव्यात्माओं का कल्याण कर आपश्री ८० वर्ष की उम्र में राजगृही पधारे और उन्होंने स्वयं की समाप्त हो रही आयुष्य जान अंतिम ऐक मास की संलेषणा कर समाधिपूर्वक प्रभु की हाजिरी में ही निर्वाणपद ऐसे मोक्ष को पाये । सदा के लिये संसार का अंत किया एवं सिद्धधाम में विराजमान हुए, उनके बाद कोई शिष्य परम्परा नहीं चली ।

पंचम गणधर श्रीसुर्धास्वामी

ग्यारह गणधरों में बहुत लंबी और आज दिन तक चली आ रही शिष्यपरंपरा यदि किसी की चली हो तो वो एकमात्र सुधर्मास्वामी की है । वर्तमान समस्त साधु-साध्वीरुप श्रमणसंघ की परम्परा के आद्यगुरु श्रीसुधर्मास्वामी है । श्रीसुधर्मास्वामी ने मगधदेश के समीप के विद्या के धाम जैसे कोल्लागसन्निवेश गांव में ब्राह्मण जाति में अग्निवेश्यायन गोत्रवाले विप्रवर्य श्रीधम्मिल के घर भद्रिला ब्राह्मणी की कुक्षी से जन्म लिया था । उत्तराफाल्गुनी (हस्तोतरा) नक्षत्र में जन्मे हुए ये सुधर्मा आगे जाकर महान विद्वान बने । ब्रह्मचर्याश्रम में विध्ययन समाप्त कर उन्होंने गृहस्थाश्रम में कदम रखा । कर्मकांडी, शास्त्रो के ज्ञाता पंडितश्रेष्ठ के रुप में उनकी यशकीर्ति

दसों दिशाओं में फैली हुई थी । चौदह वेद विद्या के पारंगामी विद्धद्शिरोमणी सुधर्म पंडित का पूरा नाम था - श्रीसुधर्म धम्मिल अग्निवेश्यायन आपश्री अध्यापक के रुप में व्यवसाय से जुडे थे, उनके ज्ञान से आकर्षित हो ५०० ब्राह्मण उनके शिष्य बने थे ।

इतनी बडी विद्वत्ता में भी एक मन की बात वे किसी को नहीं बताते थे, शास्त्रार्थ एवं वाद-विवाद में निष्णात तथा वादि विजेता इस पंडित के मन में ऐसा ठस गया था कि इस जन्म जैसा ही अगला जन्म होता है, मृत्यु के बाद जन्म भले बदलता हो परंतु गति नहीं बदलती इसका कारण यह कि शाली में से शाली ही उत्पन्न होती है, इसी तरह मानव मरकर मानव ही होता है, घोडा मरकर घोडा ही बनता है, देव मरकर देव तथा नारकी मरकर पुनः नारकी, ऐसा वे जन्मान्तर साद्श्य में मानते थे ।

योगानुयोग सोमिल ब्राह्मण के आमंत्रण का मान रखकर वे जब अपापापुरी में यज्ञ में अपने ५०० शिष्यो के साथ पधारे थे और जब अपने से आगे चार बडे धुरंधर विद्वानो को भगवान के पास समवसरण में गये जान तब वे भी तैयार हो गये । समवसरण में त्रिकालज्ञानी, सर्वज्ञ श्रीमहावीर प्रभु के पास अपनी शंका व्यक्त की । प्रभु ने उनसे कहा कि, ''हे सुधर्म ! तू **''पुरषो वै पुरुषत्वमपरावः ते पशुत्वम् ''** इस वेदपद का अर्थ पुरुष पुरुषपने को व पशु पशुपने को भवांतर में प्राप्त करते है, इस तरह का विचार करके ऐसा निश्चयवाला हो गया है कि, मनुष्य मरकर मनुष्य ही होता है और पशु मरकर पशु ही होते है परंतु अन्य गति को नहीं पाते यानि जो जैसा होता है, वो वैसा ही होता है, तेरी यह मान्यता बराबर नहीं है, कारण कि इस वेदपद का अर्थ ऐसा है कि कोई मृदुता व सरलता आदि गुणों वाली आत्मायें मनुष्यपने में रह मरकर भी मनुष्य का अवतार पाती है यानि मनुष्य ही होती है । उसी तरह पशुपना दिलवाने वाले किसी कर्म से कितने ही पशु भी मरकर पशुपने को पाते है, ऐसे अर्थ को बतलाने वाले ये वेदपद है परंतु मनुष्य मरकर मनुष्य ही होता है और पशु मरकर पशु ही होता है, अन्य गति में जाता नहीं है, ऐसा अर्थ सूचित करने वाला नहीं है, कारण कि, **''शृगालो वै ऐष जायते यः सपुरुषो दहयते''** यानि कि जिस मनुष्य को विष्टा सहित जलाने में आये तो वो मनुष्य शियार बनता है, ऐसे वेदपद मनुष्य शियार होता है, ऐसा कहते है, इसलिये ऐसा समझना कि कर्मानुसार मनुष्य या पशु भी नारकी, तिर्यंच, मनुष्य या देव पने में उत्पन्न होते है, यानि जीव कर्मानुसार चार गति में उत्पन्न होता है । मनुष्य पशु कैसे हो सकता है ? कद्दू उगाने पर गेहूँ नहीं उत्पन्न होते, ऐसा तेरे मन में जो तर्क उत्पन्न होता है, वो भी ठीक नहीं कारण कि गोबर से भी बिच्छू की उत्पत्ति दिखती है, वगैरह वीरप्रभु के वचन सुन संशय दूर होने से प्रतिबोध पाकर विनय भाव से नम्र बने हुए अपने पांच सौ विद्यार्थी शिष्यो सहित सुधर्मा पंडित प्रभुचरणों में झुक गये फिर प्रभु के पास से परिवार सहित दीक्षा ले प्रभु के शिष्य बने । उन्होंने भी प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना की ।

कर्म की विचित्रता का विपाक समझे और जीव का जन्मान्तर उसी तरह गत्यंतर समझकर ५० वर्ष की उम्र में वहीं के वहीं पर सर्वसमर्पित भाव से ५०० शिष्यो के साथ दीक्षा लेकर सच्चे साधु बने, बस अब तो प्रभु के चरणों में ही जीवन जीना है, उनकी वाणी का पान ही करना है ।

उनकी कुल आयु १०० वर्ष की थी निरुपक्रम आयुष्यवाले आपश्री ने ५० वर्ष घर संसार में बिताये और पचास वर्ष का चारित्र पालन किया ।

वीर प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना कर, चौदह पूर्व के ज्ञाता हुए । वे चौथे आरे में जन्में हुए तथा वज्रऋषभनाराच नाम का सर्वश्रेष्ठ शारीरिक संघयण एवं सर्वोत्तम समचतुरस्त्र संस्थानवाला शरीर पाये थे । पुण्य प्रतापी महापुरुष ने ५० वर्ष के चारित्र पर्याय में २ वर्ष का केवलीपर्याय भोगा । वैसे ग्यारह गणधरों मे सबमें बडी में बडी १०० वर्ष की उम्र उनकी ही थी । परंतु सबमें कम से कम केवली पर्याय सिर्फ आठ वर्ष का भी सुधर्मास्वामी का ही था । ४२ वर्ष के दीर्घ काल तक वे छद्मस्थ रहे और भगवान महावीर के निर्वाण के बाद उम्र के ९२ वर्ष में केवलज्ञान - केवलदर्शन पाये थे और आठ वर्ष तक केवलज्ञानी रह कर १०० वर्ष की अंतिम उम्र में आपश्री राजगृही पधारे । उम्र में सबसे बडे होने के कारण अन्य सारे ही गणधर अपना शिष्य परिवार उन्हें सौपते गये । अन्य किसी गणधरों की लम्बी शिष्य परम्परा नहीं चली परंतु पांचवे गणधर श्री सुधर्मास्वामी की शिष्य परम्परा बहुत लंबी चली । उनके शिष्य जंबुस्वामी केवलज्ञान पाकर मोक्ष में गये जंबुस्वामी के शिष्य प्रभवस्वामी, उनके शिष्य शय्यंभवस्वामी.... आदि शिष्य के शिष्य, प्रशिष्य आदि की परम्परा चली और वर्तमान अवसर्पिणी के २१००० वर्ष के पांचवे आरे के अंतिम समय में होने वाले श्रीदुप्पसहसूरि तक चलेगी, तब तक उनके आगम अंगसूत्रादि रहेंगे । अभी प्रचलित द्वादशांगी उनकी ही है और सर्व साधु-साध्वी उनकी ही शिष्य परम्परा में है ।

१०० वर्ष की उम्र में राजगृही में उन्होनें अंतिम एक मास की संलेषणा के साथ पादपोपगमन कर देह छोड सदा के लिये जन्म-मरण का फेरा टाल, भगवान महावीर के बाद अजरामर स्थान निर्वाण - मोक्षपद प्राप्त किया ।

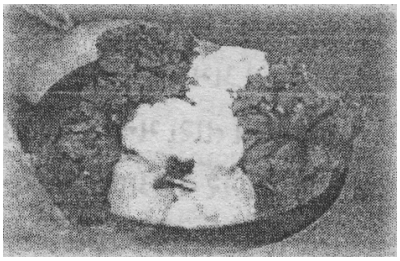

पूष्प पूजा

(लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

आ. हरिभद्रसूरि म.

जंबूद्वीप जिसमें जल भी है स्थल भी है.....
नदियाँ भी है सागर भी है.....
खाइयाँ भी है टेकडियाँ भी है.....
पर्वत भी है शिखर भी है.....

हमें धीरे धीरे इन सब का परिचय करना है । परंतु यह परिचय प्राप्त करते करते एक लक्ष्य रखना है कि यहाँ सामान्यतः जो विवेचन आता है वह शाश्वत पदार्थोंका है, अशाश्वत, नाशवंत पदार्थ सदा परिवर्तनशील होने के कारण बदलते रहते है अतः उसका वर्णन इसमें दिया नहीं है, जिसका घर कभी भी बदल जाता है, उसका पता लेने से क्या फायदा ? उसी तरह जो वस्तु कभी भी नष्ट होती हो उसकी जानकारी पाने से क्या फायदा ?

चलो, लघु संग्रहणी के आधार पर आगे बढें । शाश्वत पर्वत कौन कौन से है उसकी जानकारी प्राप्त करें ।

पर्वत

कुल पर्वत दो सौ उनहत्तर है । पर्वत क्षेत्रोंका विभाजन करते है । इन पर्वतो के अध्ययन के लिये निम्नोक्त विभाग हो सकते है ।

अ	वृत्त वैताढ्य पर्वत	००४
आ	दीर्घ वैताढ्य पर्वत	०३४
इ	वक्षस्कार पर्वत	०१६
ई	चित्र-विचित्र पर्वत	००२
उ	यमक-समक पर्वत	००२
ऊ	कंचनगिरि पर्वत	२००
ऐ	गजदन्तगिरि पर्वत	००४
ऐं	मेरु पर्वत	००१
ओ	वर्षधर पर्वत	००६
	कुल पर्वत	२६९ जंबूद्वीप में है ।

चार वृत्त वैताढ्य पर्वत

इन चार पर्वतों का आकार गोल प्याले जैसा है । ये पर्वत १००० योजन उंचे और मूल में तथा मध्य एवं उपर भी १००० योजनवाले हैं ।

हिमवंत क्षेत्र के मध्य में रहे हुए वृत्त वैताढ्य का नाम शब्दापाती है ।

हिरण्यवंत क्षेत्र के मध्य में रहे हुए वृत्त वैताढ्य का नाम विकटापाती है ।

हरिवर्ष क्षेत्र के मध्य में रहे हुए वृत्त वैताढ्य का नाम गंधापाती है ।

रम्यक क्षेत्र के मध्य में रहे हुए वृत्त वैताढ्य का नाम माल्यवंत है ।

चौंतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत

भरत और ऐरावत क्षेत्र के बीच एक एक और महाविदेह क्षेत्र के बीच बत्तीस वैताढ्य पर्वत ऐसे सब मिलाकर चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत है । ये हरेक वैताढ्य पूर्व-पश्चिम लंबा और २५ योजन उंचा है ।

सोलह वक्षस्कार पर्वत

महाविदेह क्षेत्र में ३२ विजय है । सोलह मेरुपर्वत के पूर्व में और १६ मेरुपर्वत के पश्चिम में ये सोलह विजय पुनः आठ उत्तर में और आठ दक्षिण में ऐसे कुल चार विभागो में विभाजित है । यहाँ पर एक विजय फिर वक्षस्कार पर्वत, फिर से विजय फिर अंतरनदी फिर से विजय बाद में वक्षस्कार विजय इस तरह हरेक भाग में ४-४ वक्षस्कार पर्वत है । चारो भागों में (४-४) कुल मिलाकर सोलह वक्षस्कार पर्वत है । ये वक्षस्कार पर्वत उत्तर-दक्षिण लंबे है, चौडाइ में ५०० योजन है । प्रारंभमें उंचाइ ४०० योजन है । फिर बढती हुई दुसरे छोर पर ५०० योजन हो जाती है । यह प्रत्येक पर्वत १०० से १२५ योजन जमीन में गहराई में है । वक्ष याने छाती महाविदेह की विजय आमने सामने है, वैसे हि ये पर्वत आमने सामने है । एक बाजु के पर्वत निषध पर्वत से उत्तर की ओर जाते है । तभी दुसरा समाने का पर्वत नीलवंत पर्वत से दक्षिण की ओर जाता है । जो आमने सामने छाती से मिलते है ऐसा प्रतीत होता है । अथवा विजयों की मर्यादा (हद की रक्षा करने के लिये) बाँध कर छातीसे रक्षा करते प्रतीत होते है । अतः वे वक्षस्कार कहलाते है ।

दो चित्र- विचित्र पर्वत

महाविदेह क्षेत्रांतर्गत आये हुए देवकुरु क्षेत्र में ये दो पर्वत आये हुए है, एक पूर्व तरफ है तो दुसरा पश्चिम की ओर है । दोनो पर्वत गोलाकार है । १००० योजन उँचे है । मूल में १००० योजन विस्तारवाले है, उपरसे ५०० योजन विस्तारवाले है । इस पर्वत का आकार उर्ध्वगोपुच्छ जैसा है ।

दो यमक-समक पर्वत

ये दोनो पर्वत चित्र-विचित्र पर्वतो जैसे ही है , परंतु ये महाविदेह क्षेत्रांतर्गत आये हुए उत्तरकुरु क्षेत्र में है ।

दो सौ कंचनगिरि पर्वत

महाविदेह क्षेत्रांतर्गत आये हुए देवकुरु और उत्तरकुरु में ये पर्वत स्थित है । देवकुरु - उत्तरकुरु के क्षेत्र के मध्य में एक एक के उपर पाँच पाँच सरोवर आये हुए है । दोनो क्षेत्र के १० सरोवर है । इन दस सरोवरों के पूर्व और पश्चिम में १०-१० कंचनगिरि है ।

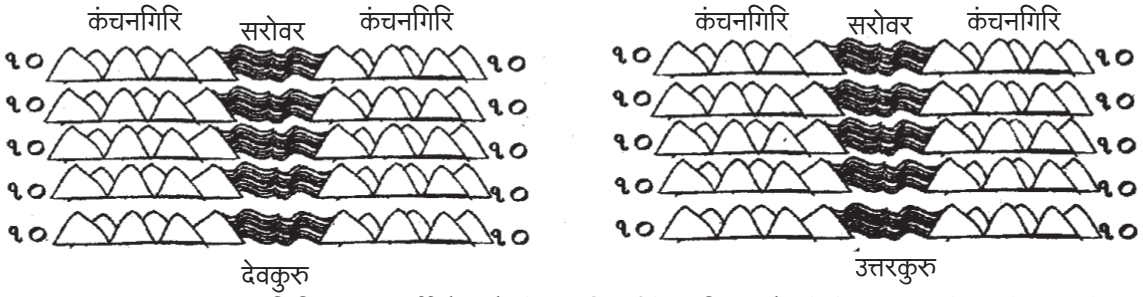

नामानुसार कंचनगिरि कंचनवर्णी है, सौ योजन उँचाई के भूमिपर है, दोनो बाजू घटते घटते ५० योजन के होते हुए शिखर के आकारवाले है ।

चार गजदंतगिरि पर्वत

गज याने हाथी और दंत याने दांत, हाथी के दांत जैसे ये पर्वत होने से गजदंगगिरि कहलाते है ये चारो पर्वत मूल में ५०० योजन चौडे और छोर पर अंगुल के असंख्यातवे भाग के जितने पतले है । लंबे और बीच में वक्र होने से हाथी के दंतुशूल जैसे दिखाई देते है । दो पर्वत सौमनस और विद्युत्प्रभ देवकुरु को घेरकर है । वे अनुक्रम से श्वेत और लाल वर्ण के है । माल्यवंत और गंधमादन ये दो पर्वत उत्तरकुरु को घेरकर रहे हुए है । वे अनुक्रम से हरे और पीले रंग के है ।

मेरु पर्वत

जंबूद्वीप के एवं महाविदेह के बराबर मध्य में मंदर देव के नाम पर मंदर मेरु नामक पीला सुवर्ण मय पर्वत है । यह मेरु पर्वत लाख योजन का है । १००० योजन अंदर और ९९००० योजन उपर है । १००० योजन चौडा गोलाकार है । इस मेरु पर्वत के तीन कांड है । तीन कांड के उपर तीन और एक पर्वत के तलहटी में ऐसे कुल चार वन है । मेरु पर्वत के शिखर पर पांडुक वन है । इस पांडुकवन में ५०० योजन लंबी, २५० योजन चौडी और चार योजन मोटी अर्जुन (श्वेत) सुवर्णकी ४ (चार) महाशीलाएं चार दिशाओं में है । इन शीलाओंपर उस उस दिशा में जन्मे हुए तीर्थंकर भगवंत का जन्माभिषेक होता है । चार शिलाओं पर छः सिहांसन होते हैं ।

वर्षधर पर्वत

वर्ष याने क्षेत्र और धर याने धारण करनेवाला । दो क्षेत्रों के मध्य में अथवा क्षेत्र की सरहद बनकर दोनो क्षेत्रों को अलग करते हुए पूर्व-पश्चिम रहे हुए है । लंबचौरस आकार के है ।

१. चुल्लहिमवंत - यह पर्वत भरतक्षेत्र और हिमवंत क्षेत्र को अलग करने वाला दोनों के बीच स्थित है । यह पर्वत पीला सुवर्णमय और १०० योजन ऊँचा है । और २५ योजन जमीन के अंदर है । १०५२ $\frac{१२}{१९}$ योजन चौडा है ।

२. महाहिमवंत - यह पर्वत हिमवंत क्षेत्र और हरिवर्ष क्षेत्र को अलग करनेवाला दोनों के बीच स्थित है । यह पर्वत पीला सुवर्णमय और २०० योजन उँचा है और ५० योजन जमीन के अंदर है । ४२१० $\frac{१०}{१९}$ योजन चौडा है ।

३. निषध पर्वत - यह पर्वत हरिवर्ष क्षेत्र और महाविदेह क्षेत्र को अलग करनेवाला एवं दोनों के बीचोबीच स्थित है । यह पर्वत लाल तपाये हुए सुवर्ण के रंग का है, ४०० योजन उंचा है और १०० योजन अंदर है ।

१६८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन चौडा है ।

४. नीलवंत पर्वत - यह पर्वत महाविदेह क्षेत्र और रम्यक क्षेत्र को अलग करनेवाला दोनो क्षेत्रोंके बिचोबिच स्थित है । यह पर्वत हरे वर्ण के वैडूर्यरत्नमय, ४०० योजन उँचा एवं १०० योजन अंदर है, १६८४२$\frac{२}{१९}$ योजन चौडा है ।

५. रुक्मि पर्वत - यह पर्वत रम्यक क्षेत्र और हैरण्यवंत क्षेत्र को अलग करनेवाला दोनों के बीच स्थित है । यह पर्वत श्वेत वर्ण का रजत मय (चांदी का बना हुआ), २०० योजन उँचा और ५० योजन अंदर है । ४२१० $\frac{१०}{१९}$ योजन चौडा है ।

६. शिखरी पर्वत - यह पर्वत हैरण्यवंत क्षेत्र और ऐरावतक्षेत्र को पृथक करनेवाला एवं दोनों के बीचोबीच स्थित है । यह पर्वत पीले वर्ण का सुवर्णमय, १०० योजन उँचा, २५ योजन अंदर है, १०५२ $\frac{१२}{१९}$ योजन चौडा है ।

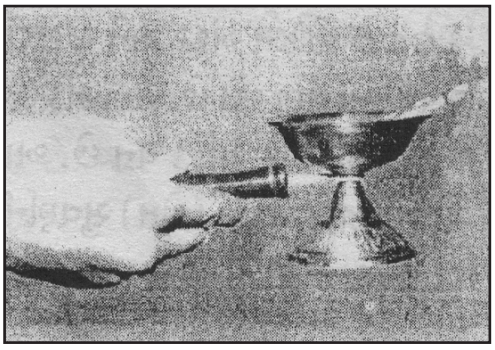

धूप पूजा

श्रावक - दिनकृत्य धर्म-जागरीका

मेरुशिखर के उपर इंद्र महाराजाने सुवर्ण प्रमुख आठ जाति के कलशों से प्रभुजी का जन्माभिषेक किया था इसका मन में चिंतन करते हुए दोनो हाथों से कलश धारण कर मौन रहकर प्रभुजी का अभिषेक करना चाहिये । फिर जल से प्रक्षाल कर तीन मुलायम अंगुलुंछणों से प्रभु के अंग निर्जल करना, फिर प्रभुजी की नवांगी केसर-चंदन से पूजा करना । नवांगी पूजा करने के बाद पुष्पपूजा कर अंगरचना करें । पश्चात अग्र पूजा में धूप,दीप, अक्षत, नैवेद्य एवं फल पूजा कर भावसे प्रभु की भावपूजा करे । (चैत्यवंदन करे) यह अष्टप्रकारी पूजा सर्व सामान्य होने से सविशेष विवेचन किया नहीं है । द्रव्यपूजा के लिये जरुरी सूचनाएं आगे बतायेंगे ।

अष्टप्रकारी पूजा का प्रयोजन

अष्टकर्म के विनाश के लिये सिद्ध भगवंत के आठ गुणों को प्रकट करने के लिये और मोक्ष न मिले तब तक अष्ट महासिद्धि आदि प्राप्त करने के लिये प्रभुजी की उत्कृष्ट भाव से अष्टप्रकारी पूजा अवश्य करनी चाहिये ।

जिनेश्वर भगवंत का अभिषेक करने से, जलपूजा करने से आत्मा कर्ममल को दूर कर निर्मलता प्राप्त करती है ।

प्रभुजी की चंदनपूजा करने से जीव को संसार की आधि-व्याधि में शीतलता, समता और शांति मिलती है ।

परमात्मा की पुष्पपूजा करने से जीव को गुणों की सुवास एवं सु-मन की (अच्छे मन की) प्राप्ति होती है ।

देवाधिदेव की धूपपूजा करने से धूप की जैसी आत्मा की उर्ध्वगति होती है ।

अरिहंत की दीपक पूजा करने से अज्ञानरूपी अंधःकार का नाश होकर सम्यकज्ञान का दीपक प्रकट होता है ।

वीतराग की अक्षत पूजा करने से रागद्वेषमय संसार की चार गतियों में आत्मा सम्यगदर्शन, ज्ञान, चारित्र की आराधना द्वारा सिद्धगति रुप पंचमगति को प्राप्त करना है ।

जिनेश्वर परमात्मा की नैवेद्य पूजा से आत्मा आहार संज्ञा से मुक्त बनकर अनाहारी पद प्राप्त करता है । प्रभुजी के फल पूजा द्वारा संपूर्ण आराधना के सार रुप मोक्षफल को साधक प्राप्त करता है ।

देवपूजा के लिये वस्त्रशुद्धि

पूर्वोक्त रीति से स्नान करने के पश्चात पवित्र, सुकोमल, सुगंधी रेशमी अथवा सुती सुंदर वस्त्र, रुमाल प्रमुख से अंगलुछणा कर दुसरे शुद्ध वस्त्र पहनने के लिए, गीले कपडे युक्तिपूर्वक उतारकर गीले पैर से मलीन जमीन को स्पर्श किये बिना पवित्र स्थान पर आकर उत्तर दिशा सन्मुख खडा रहकर मनोहर, नया, फटा नहीं, सीया हुआ नहीं, जला नहीं, पराया नहीं ऐसे चौडे निर्मल धूप से वासित श्वेत वस्त्र को प्रभुपूजा के लिये धारण करे । जिन वस्त्रों को पहनकर बडीनीति, लघुनीति अथवा भोजन किया हो वे वस्त्र पूजा के लिये अयोग्य मानना । देवपूजा में वापरने के वस्त्र देवपूजा के अतिरिक्त कहीं भी वापरना नहीं । देवपूजा के वस्त्र थोडी देर के लिये ही

वापरना और वे वस्त्र देवपूजा के सिवा अन्यत्र कहाँ भी उपयोग में न लेना । देवपूजा के वस्त्र बारबार धोना पूजा के वस्त्र अपने सांसारिक काम के वस्त्रों के साथ अथवा पराये बाल,वृद्ध, स्त्री प्रमुखादि के वस्त्रों के साथ न रखना । प्रायः पराये अन्यों के वस्त्र पूजा के लिये वापरना नहीं ।

देव पूजा के लिये द्रव्य शुद्धि

अच्छी जमीन में उत्पन्न हए, अच्छे गुणवाले, जाने पहचाने विश्वासपात्र मनुष्य के पास से मंगाये हुए, पवित्र बर्तन में भरकर, ढँककर लाये हुए, लानेवाले का मार्ग में नीच जाति के लोगों से स्पर्श ना हो इसकी सावधानी से बहुत यतना से लाये हुए, लानेवाले को बराबर मूल्य देकर प्रसन्न कर मंगाये हुए, (फूलवाले से कपट कर, उससे चोर कर लिये फूल-फल अयोग्य माने जाते है) फूल वापरना चाहिये ।

इस तरह पवित्र स्थान पर रखे हुए, साफ केशर, कपूर, बरास, जातिवंत चंदन, धूप, गाय के घी का दीपक, अखंड अक्षत, तभी बनाये हुए, चूहे-बिल्ली आदि हिंसक जीवोंने न सुँघे हुए, न स्पर्शे हुए और न झुठलाये हुए ऐसे पकवान प्रमुख नैवेद्य और ताजे मनोहर सुस्वादिष्ट मनभावक सचित्त-अचित्त फल वापरना चाहिये ।

ये शुद्धियाँ (वस्त्र शुद्धि एवं उपकरण शुद्धि) और उनके साथ साथ श्रावक ने मन की शुद्धि, वचन की शुद्धि, काया की शुद्धि, भूमि की शुद्धि एवं भावों की शुद्धि आदि सात शुद्धियाँ जिनालय में प्रवेश करते हुए रखनी चाहिये । जिनराज की पूजा यह श्रावक का नित्य कर्तव्य है । पुण्यानुबंधी पुण्य का अद्‌भूत साधन है । परंतु जिनपूजा में शुद्धि और विधि का पालन अत्यंत आवश्यक है । जिनपूजा करते हुए प्रायः तो मौन ही रहना चाहिये । ऐसा न बने तो भी पाप हेतुक वचन, एवं पाप हेतुक कायिक संज्ञा तो अत्यंत त्याज्य है ।

जिस तरह जिनपूजा सुखदायी है, उसी तरह जाने अनजाने में हुई जिन आशातना दुःखदायी भी है । अज्ञान से हुई जिनराज की आशातना भी जीव को दुःखदायी है, तो जानते हुए आशातना की जाय तो वह सविशेष दुःख कष्ट को देनेवाली बने इसमें आश्चर्य क्या ? अर्थात् आश्चर्यकारक तो नहीं ही है ।

जगत् गुरु देवाधिदेव की पूजा करते हुए शरीर पर खुजली करना अथवा मुख से थुंक, कफ डालना आदि प्रमुख आशातना का त्याग करना ।

जिनराज की पूजा करते हुए अपना बाल जिनालय में न गिरे अथवा प्रभुजी को बालोंका स्पर्श न हो इसकी सावधानी रखनी दाहिये ।

वीतराग की पूजा करते हुए अष्टपटल मुखकोश का उपयोग करना चाहिये । प्रभुजीको पूजा करते हुए नाखून न लग जाये इसका उपयोग रखना चाहिये ।

परमात्म पूजा करते वक्त शारीरिक शुद्धि एवं उपयोग में ली गयी प्रत्येक सामग्री की शुद्धि रखने में सावधान रहना चाहिये ।

ऐसी सावधानी न रखने से यह जीव संसार में बहुत समय तक परिभ्रमण करता रहता है । दुःख-कष्ट पाकर नीच कुलों में जन्म मरण करता है ।

उचिट्ठं फल कुसुमं नैवज्जंवा जिणस्स जो देइ ।
सौ निअगोअं कम्मं, बंधइ पायन्न जम्मंमि ।।

अयोग्य फल, फुल अथवा नैवेद्य भगवान को चढाते है तो वह परलोक में नीच कुल में उत्पन्न होने का नीचगोत्र कर्म बाँधता है ।

कामरुप पट्टण नगर में एक चांडाल के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका जन्म होते ही पूर्वभव के वैरी व्यंतरिक देवता ने वहाँ से हरण कर उसे वन में रख दिया । उस वक्त कामरुप पट्टण का राजा वनमें घूमने निकला था । उसने बालक को वन में पडा देखकर खुद अपुत्र होने से उसे अपने दरबार में लाकर पुण्यसार नाम देकर, पालपोसकर यौवनावस्था में पढा लिखाकर होशियार बनाया । अंत में राजाने उसे राज्य सौंपा और दीक्षा ली । संयम की सुंदर आराधना करते हुए छाती कर्मों को खपाकर केवलज्ञान पाया । केवलज्ञानी राजर्षि विहार करते करते कामरुप पट्टण आये । पुण्यसार राजा एवं नगर के लोग उन्हे वंदन करने गये । इस अवसरपर पुण्यसार को जन्म देनेवाली चांडालनी भी आयी थी । संपूर्ण सभा के सामने राजा को देखते ही उसके स्तन से दूध की धारा बहने लगी और धरती पर गिरने लगी ।

यह देखकर आश्चर्यचकित राजा ने केवली भगवंत को पूछा : हे भगवंत ! इस चांडालनी के स्तन से मुझे देख दूध की धारा क्यो बहने लगी ?''

केवली भगवंत बोले ''हे राजन ! वह तुम्हारी माता है, मैने तो तुझे वन में पडा देख उठा लिया था।''

राजन् पूछने लगे ''हे स्वामीन् ! किस कर्म के वजह से मैं चांडाल कुल में उत्पन हुआ ?''

उत्तर देते हुए केवली भगवंत ने कहा - '' पर्वभव में तुं व्यापारी था । एकबार जिनेश्वर की पूजा करते पुष्प जमीन पर पडा हुआ था वह चढाने लायक नहीं है ऐसा जानते हुए भी - उसमें क्या ऐसा सोचकर अवज्ञा कर प्रभु को तुने चढाया । अतः तूं नीच गोत्र में उत्पन्न हुआ ।''

तेरे पूर्वभव की जो माता थी उसने एक दिन स्त्रीधर्म (रजस्वला) में होते हुए भी देवपूजा की । उस कर्म के कारण मृत्यु पाकर चांडालनी के रुप में उत्पन्न हुई । ऐसे वचन सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन हुआ, उसने दीक्षा ली और देवगति को प्राप्त हुए ।

प्रभुजी के आशातना का फल जानकर आशातना टालने के लिये सतत प्रयत्नशील रहना । प्रभु की उत्कृष्ट भाव से एवं उत्कृष्ट सामग्री से पूजा कर मानव जीवन को सफल बनाने में उद्यमवंत रहना चाहिये ।

परमात्मा की द्रव्यपूजा करते हुए परमात्मा के प्रति उत्कृष्ट बहुमान रखना चाहिये ।

परमात्म पूजा की चौभंगी

देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा की पूजा करते हुए यथायोग्य बहुमान और सम्यक् विधि ये दोनो हो तो ही पूजा महालाभकारी होती है । ये बात विशेषसे बताने के लिये परमात्मा पूजा की चौभंगी याने चार भेद बताते है -

१) परमात्मा के प्रति सच्चा बहुमान और सच्ची विधि ।

२) परमात्मा के प्रति सच्चा बहुमान परंतु विधि सच्ची न हो ।

३) पूजाविधि सच्ची परंतु परमात्मा के प्रति सम्यग् बहुमान न हो ।

४ पूजाविधि सच्ची न हो और सम्यग् बहुमान भी न हो ।

उपर निर्दिष्ट चार भागों में से पहले दो भाग यथानुक्रम से लाभकारी जानना । अंत के दोनो भाग सचमुच अनुकरणीय नहीं है । परमात्मा के प्रति मन में उत्कृष्ट भाव निर्माण कर, की हुई पूजा ही आत्मा को निर्मल बनाती है और मोक्षमार्ग में आगे बढती है ।

दुसरे की की हुई आंगी उतारकर आंगी की जानी चाहिये या नहीं ?

अह पुव्वं चिअ केणइ, हरिज्ज पूआ कया सुविहवेण ।
तंपि सविसेससोहं, जह होइ तह तहा कुज्जा ।।

प्रभुजी की पूजा करने जायें और हमे खुद को प्रभुजी की आंगी भरने के भाव हो तो आंगी उतारकर फिर से आंगी रचा सकते है क्या ? ऐसा प्रश्न कई आराधकों के मन में आता होगा । इस प्रश्न का समाधान उपरोक्त श्लोक में करते हुए भाष्य में बताया है कि, "किसी ने पहले पूजा की हो अथवा आंगी रची हो, और वैसी पूजा अथवा आंगी रची जा सके ऐसी पूजा आंगी की सामग्री अपने पास न हो तो पूर्व आंगी के दर्शन से उत्पन्न होते पुण्यानुबंधी पुण्य के अंतराय होने के कारण वह पूर्व की आंगी उतारे नहीं, परंतु उस आंगी पूजा को विशेष शोभायमान कर सके ऐसा होता हो तो पूर्व पूजा पर विशेष रचना करें परंतु पूर्व आंगी विच्छेद करे नहीं ।

मूलनायक की प्रथम पूजा किसलिये ?

कई आराधकों को शंका होती है कि सब तीर्थंकर समान होने पर भी पहले मूलनायक की और फिर अन्य परिवार की पूजा किस लिये ? इस शंका का समाधान करते हुए शास्त्रकार कहते है -

मूलनायक एवं अन्य तीर्थंकर समान होते है फिर भी स्थापना समय पर ऐसी कल्पना की गई है कि इन तीर्थंकर को मूलनायक मानना तब उसी व्यवहार से मूलनायक पहले पूजे जाते है, परंतु अन्य तीर्थंकारों की अवज्ञा अथवा आशातना की बिलकुल बुद्धि नहीं होती है ।

सब प्रतिमाएं एक समान प्रशांत मुद्रावाली नहीं होती, परंतु मूलनायक की प्रतिमा तो विशेषतः प्रशांत मुद्रावाली ही होती है । अतः तूर्त ही बोध पा सकते है । इसीलये पहले मूलनायक की ही पूजा योग्य है ।

उचिअतं पूआए, विसेस करणं तु मूलबिंबस्स ।
जपडइ तथ्थ पढमं, जणस दीट्ठी सहमणेणं ।।

पूजा करते हुए विशेष पूजा तो मूलनायक बिंब की ही होनी चाहिये । क्योंकि मंदिर में प्रवेश करते ही पहले मूलनायक पर सब लोगों की दृष्टि पडती है और मन की एकता होती है ।

देवाधिदेव की पूजा विधिपूर्वक ही करना परंतु अविधि से न करना । अविधि से करने से पूजा का महान लाभ साधक गँवाता है , और अल्प लाभ को प्राप्त होता है । द्रव्यार्थी कोई दो पुरष देशांतर जाकर किसी सिद्धपुरुष की सेवा कर रहे थे । विनयपूर्वक की गई बहुत सेवा से सिद्धपुरुष उन पर प्रसन्न हुए ।

उन्होंने देवाधिष्ठित महिमावंत तुंबफल के बीज देकर उसकी विधि बतायी । ये बीज सौ बार हल चलाये हुए खेत में मंडप की छाया कर, अमुक नक्षत्र वार के योग पर बुवाइ करना, जब उसका बेल उत्पन होगी तब पहले से ही फलों के बीज लेकर संग्रह करना । फिर पुष्प,फल,टहनी सहित बेल को खेत में ऐसे ही रखकर नीचे ऐसा कुछ सस्कार करना जिस से उस पर पडी राख व्यर्थ न जाय, फिर उस सूखे बेल को जला डालना, उसकी जो राख होती है वह सिद्ध भस्म कहलाती है । चौसठ तोलें ताम्र गलाकर उसमें एक रती सिद्धभस्म डालना जिससे वह तत्काल सुवर्ण बन जायेगा । इस तरह दोनों को सिखाकर विदाय दी । वे दोनो अपने अपने घर गये । दोनों में से ऐक ने यथाविधि कार्य किया तो उसे कहा था उसके अनुसार सुवर्ण बन गया । और दूसरे ने विधि में कुछ भूल की जिससे सुवर्ण के बजाय चांदी बनी, सुवर्ण न बना । अतः जो जो कार्य है वह सब यथाविधि हो तो ही संपूर्ण लाभकारक जानना । इसीलिये कहा है -

धन्नाषं विहिजोगो, विहिपख्खाराहगा सया धन्ना ।
विहि बहुमाणी धन्ना, विहि पख्खा अदुसगा धन्ना ।।

अर्थात - जिसकी क्रिया विधि संयुक्त हो वे धन्य है । विधिसंयुक्त करने की धारणा रखते हो वे धन्य है । विधिमार्ग के उपर आदर बहुमान रखने वाले वे धन्य है । विधिमार्ग की निंदा न करे वे पुरुष धन्य हैं ।

'अविधि से करने बजाय न करना अच्छा' ऐसा बोलने से उत्सूत्र प्ररुपणा का दोष लगता है, सर्वथा न करने से अविधि से भी करना अच्छा है । अतः धर्मानुष्ठान प्रतिदिन करना ही चाहिये और करते करते जैसा बने वैसा विधियुक्त हो ऐसा पुरुषार्थ करना श्रेयस्कर है । हरेक ने धर्मानुष्ठान अपनी शक्तिनुसार यथाविधि कर अंत में अज्ञान से की हुई अविधि आशातना का दोष दूर करने के लिये मिच्छामि दुक्कडम् की याचना करनी चाहिये ।

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

मोहनीय - कर्म (चालू)

मीसा न रागदोसो, जिणधम्मे अंतमुहू जेहा अन्ने ।
(य) नालियर दीवमणुणो, मिच्छं जिणधम्म विवरीअं ।। १६ ।।

गाथार्थ - जिस प्रकार नालियर द्वीप के मनुष्यों को अन्न पर न प्रीति - राग न अप्रीति-द्वेष होता है, उसी प्रकार मिश्र मोहनीय के उदय वाले जीव को जिन प्ररुपित धर्म पर न राग (प्रीति) भाव होता है, न द्वेष (अप्रीति) भाव होता है । मिश्र मोहनीय का काल अन्तर्मुहुर्त का होता है ।

अरिहंत जिन प्रतिपादित धर्म (जैन धर्म) से विपरीत श्रद्धा करवाने वाला मिथ्यात्व मोहनीय है ।

नालियरद्वीप में किसी प्रकार का धान्य होता नहीं । इस द्वीप के मनुष्यो ने धान्य (अन्न) देखा नहीं, उसके बारे में सुना नहीं, और कभी खाया भी नहीं इससे उन्हें अन्न पर राग भी नहीं होता और द्वेष भी नहीं होता.

उसी प्रकार मिश्र मोहनीय कर्म के उदय में जिनधर्म पर राग भी नहीं होता और द्वेष भी नहीं होता.... समभाव होता है ।

यह मिश्रभाव अंतमुर्हूर्त तक ही होता है । फिर जीव अध्यवसायो की शुद्धि-अशुद्धि के कारण सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व पाते है ।

सोलस कसाय नव नो कषाय, दुविहं चरित्त मोहणीयं ।
अण-अपच्चखाणा, पच्चखाना य संजलणा ।। १७ ।।

गाथार्थ - चारित्र मोहनीय दो प्रकार का है, कषाय और नोकषाय । कषाय चारित्र मोहनीय सोलह प्रकार का है और नो कषाय चारित्र मोहनीय नौ प्रकार का है । कषाय चार प्रकार के होते हैं - १) अनन्तानुबंधी कषाय २) अप्रत्याख्यानी कषाय ३) प्रत्याख्यानी कषाय ४) संज्वलन कषाय ।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहादि सदाचार से युक्त चारित्र है । ऐसे चारित्र में बाधा पहुंचाये वह चारित्र मोहनीय कर्म है ।

इस चारित्र मोहनीय कर्म के दो भेद हैं -

१) कषाय मोहनीय कर्म और २) नो कषाय मोहनीय कर्म

''कष'' याने संसार

आय याने लाभ.....आमदनी

जिससे संसार का लाभ या वृद्धि हो वह कषाय कहलाता है ।

ये कषाय चार हैं -

१) **क्रोध** - याने गुस्सा, कोप, आवेश, रोष वगैरह ।

२) **मान** - याने अहंकार, अभिमान, घमंड, गर्व वगैरह ।

३) **माया** - याने शठता, ठगाई, छल, प्रपंच, कपट वगैरह ।

४) **लोभ** - याने लालच, आसक्ति, ममत्व, मूर्च्छा वगैरह ।

इन चार कषाय के १. अनंतानुबंधी २. अप्रत्याख्यानी ३) प्रत्याख्यानी और ४. संज्वलन ऐसे ४-४ भेद होते है । इससे कुल सोलह कषाय के भेद हैं ।

अनंत संसार का अनुबंध कराने वाले मिथ्यात्व का उदय करे वह **अनंतानुबंधी** (क्रोध, मान, माया, लोभ) चार कषाय हैं ।

जिसके उदय से थोडा भी पच्चखाण उदय में न आवे वह **अप्रत्याख्यानी** (क्रोध, मान, माया, लोभ) चार कषाय हैं ।

जिसके उदय से सर्व-विरति उदय में न आवे वह **प्रत्याख्यानी** (क्रोध, मान, माया, लोभ) चार कषाय हैं ।

चारित्र लेकर उत्कृष्ट साधना करते सर्व विरती धर को भी दोष लगावे मलिनता लाये वह **संज्वलन** कषाय है ।

नोकषाय

कषाय तो नहीं पर **कषाय के सहचर जो कषाय करने में प्रेरित बनते है, उत्तेजित करके उत्प्रेरित करके अंत में कषाय** रुप परिणमते हैं नोकषाय कहलाते हैं ।

नो कषाय के नौ भेद हैं - १) हास्य २) रति ३) अरति ४) शोक ५) भय ६) जुगुप्सा ७) स्त्री वेद ८) पुरुष वेद ९) नपुंसक वेद

जा-जीव-वरिस-चउमास-पक्ख-गा निरय-तिरिअ-नर-अमरा ।

सम्मा- णु सव्व - विरइ - अहक्खाय-चरितं - घाय करा ।

इन चारों कषायों का काल क्रमशः यावज्जीवन, एक वर्ष, चार मास और पंद्रह दिन है । क्रमशः नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति देने वाले हैं तथा क्रमशः सम्यक्त्व, देशविरती, सर्वविरती और यथारव्यात चारित्र के घातक हैं ।

इस गाथा में कषायो की काल प्रमाणता ... गतिदायकता और गुणघातकता बताई गई है ।

चारों अनंतानुबंधी कषाय उत्कृष्ट से संपूर्ण जीवन तक रहे ।

चारों अप्रत्याख्यानी कषाय उत्कृष्ट से एक वर्ष तक रहे ।

चारों प्रत्याखानी कषाय उत्कृष्ट से चार महिने तक रहे ।

चारो संज्वलन कषाय उत्कृष्ट से पंद्रह दिन तक रहे ।

अनंतानुंबधी कषाय के उदय में मरे तो नरक गति में जाये ।

अप्रत्याख्यानी कषाय के उदय में मरे तो तिर्यंच गति में जाये ।

प्रत्याख्यानी कषाय के उदय में मरे तो मनुष्य गति में जाये ।

संज्वलन कषाय के उदय में मरे तो देव गति में जाये ।

अनंतानुबंधी कषाय सम्यक्त्व पाने न दे ।

अप्रत्याख्यानी कषााय देशविरती चारित्र पाने न दे ।

प्रत्याख्यानी कषाय सर्वविरती चारित्र पाने न दे ।

संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्र पाने न दे ।

कषाय कैसे है ?

जल-रेणु-पुढवी-पव्वय-राई सरिसो-चउ-व्विहो कोहो ।
तिणिस-लया-कट्ठट्ठिअ-सेल-त्थंभोवमो माणो ।।१९।।

गाथार्थ - संज्वलन, प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी एवं अनंतानुबंधी क्रोध कषाय अनुक्रम से पानी की, धूल की, पृथ्वी की और पर्वत की रेखा के समान जानने चाहिये । उपरोक्त संज्वलनादि चारों मान कषाय क्रमशः नेतर की सोटी, लकडी, अस्थि एवं शैल के स्तंभ के समान जानने चाहिये ।

१. संज्वलन क्रोध - यह क्रोध पानी में की गई रेखा के समान है जो बहुत ही अल्पकाल में विलय हो जाती है । क्रोध शांत हो जाता है ।

२. प्रत्याख्यानी क्रोध - यह क्रोध रेती में की गई लकीर के समान है जो पानी की रेखा की तरह तुरंत और स्वयं न मिटे परंतु जोर से हवा चले तो कुछ ज्यादा समय से मिटे । इस क्रोध को शांत होने में थोडा ज्यादा समय लगता है ।

३. अप्रत्याख्यानी क्रोध - यह क्रोध गर्मी में पृथ्वी में पडी दरार जैसा है । यह दरारें जल्दी नहीं भरती । बारीश आये, मिट्टी गीली होने पर दरारे भर जाती हैं । उसी प्रकार क्रोध से बनी दरारें भरने मे प्रत्याख्यानी से ज्यादा समय लगता है ।

४. अनंतानुंबधी क्रोध - यह क्रोध पर्वत में पडी दरार समान है, जो कभी भरती नहीं । यह क्रोध मृत्यु के क्षण तक भी शांत नहीं होते । भवान्तर में भी जीव को हेरान-परेशान करता है ।

ये चारो क्रोध अनुक्रम से मंद,तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम हैं ।

मान में अक्कडता है इसलिये उसे वैसे ही दृष्टांत से समझाया है ।

५. संज्वलन मान - यह मान बेंत (नेतर की सोटी) जैसा है । बेंत सहजता से नम जाती है, संज्वलन मान वाली व्यक्ति भी अल्प समझाने पर अपनी अक्कडता त्याग कर नम जाता है, झुक जाता है ।

६. प्रत्याख्यानी मान - यह मान लकडी के समान है । लकडी को झूकाना बेंत से ज्यादा मुश्किल है । इन मानधारी जीवों को समझाना नमाना भी मुश्किल होता है ।

७. अप्रत्याख्यानी मान - यह मान अस्थि जैसा है । क्या अस्थि को नमा सकते हैं, संभवित नहीं लगता फिर भी बहुत सारे प्रयोग करके महाकष्ट से उसे झुका सकते हैं । उसी प्रकार इस मान वाली व्यक्ति को खूब खूब समझाने पर महाकष्ट से थोडा झुकते हैं ।

८. अनंतानुबंधी मान - यह मान पत्थर के स्तंभ जैसा है । पत्थर के स्तंभ को झुकाने के कितने ही प्रयत्न करो सब निष्फल है । स्तंभ टूट जाये पर झुके नहीं । उसी प्रकार अनंतानुबंधी मान कषाय वाले जीव मृत्यु के क्षण तक भी अभिमान नहीं छोडते झुकने को तैयार नहीं होते । स्वयं टूट जाये, फना हो जाये, डूब जाये परंतु वट के खातिर मान नहीं छोडते ।

मायावलेहि - गोमुत्ति - मिंढ - सिंग - घणवंसिमूल समा ।
लोहा हलिद्दखंजण - कद्दम - किमि राग सामाणो ।।२०।।

गाथार्थ - संज्वलनादि चारों प्रकार की माया क्रमशः लकडी की छाल, गोमूत्रिका, घेटे के शृंग (सिंग) एवं मजबूत बांस के मूल के समान जाननी चाहिये । इसी प्रकार चार प्रकार का लोभ अनुक्रम से हल्दी, काजल, कील, (कुर्दुम) एवं कीरमजी रंग के समान जानना चाहिये ।

९) संज्वलन माया - माया में वक्रता है, इसिलिये वैसे दृष्टांत से समझाया है । संज्वलन माया बांस के छिलके समान है, उसमें वक्रता तो है पर आसानी से सीधा हो जाता है ।

१०) प्रत्याख्यानी माया - यह माया गोमूत्रिका के समान है । बैल गाडी में बैलों की मूत्रधार गति के कारण टेढी-मेढी वक्रता वाली होती है । परंतु पवन लगते ही वक्रता त्याग कर सरल बनती है । उसी प्रकार माया वाला जीव लंबे समय के पश्चात कष्ट से वक्रता - माया छोडता है ।

११) अप्रत्याख्यानी माया - यह माया भेड (घेटा) के सींग जैसी है । भेड के सींग की वक्रता अति कठिन है । महाकष्ट से महाप्रयास से टले ऐसी है । उसी प्रकार अप्रत्यख्यानी माया त्यागना अति दुष्कर है ।

१२) अनंतानुबंधी माया - यह माया बांस के कडक मूल जैसी है । बास के मूल अति मजबूत और अतिवक्र होते हैं । कभी भी सरलता को प्राप्त नहीं करते । अत्याधिक खींचने पर टूट जाता है पर वक्रता नहीं छोडता । अनंतानुबंधी मायावाला जीव मरे फिर भी माया नहीं छोडता । ऐसी तीव्रतम अनंतानुबंधी माया है ।

१३. संज्वलन लोभ - लोभ आत्मा को रंजित करता है, रंगता है इसिलिये लोभ के लिये दृष्टांत रंग के द्वारा समझाये है । संज्वलन, लोभ हल्दी के रंग के समान है । हल्दी के दाग वाले वस्त्र साबुन से धोकर धूप में रखने पर रंग गायब हो जाता है । उसी तरह संज्वलन लोभ का रंग तुरंत उड जाता है ।

१४. प्रत्याख्यानी लोभ - अंजन (काजल) जैसा यह लोभ है । काजल के दाग वस्त्र पर से सहजता से न निकले । पर थोडा कष्ट पूर्वक रंग दूर हो जाये । उसी प्रकार यह लोभ भी कष्टपूर्वक जाये ।

१५. अप्रत्याख्यानी लोभ - गाडी के पहियों में रही हुई कर्दुम (कील) जैसा है । तीव्रतर होने से यह लोभ महाकष्ट पूर्वक जाये ।

१६. अनंतानुबंधी लोभ - यह लोभ कीरमजी रंग जैसा है । कीरमजी याने मजीठ का रंग बहुत ही पक्का होता है । कपडा फट जाये पर रंग फीका न पडे । उसी प्रकार इस लोभवाला जीव मरे पर लोभ न छोडे ।

जस्सुदया होइ जीए, हास रइ अरइ सोग भय कुच्छा ।
सनिमित्त मत्तहा वा तं इह हासाइ मोहणीयं ।। २१ ।।

गाथार्थ - जिसके उदय से जीव को निमित्त सहित अथवा निमित्त रहित हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा उत्पन्न होती है उन्हें अनुक्रम से हास्य मोहनीय, रति मोहनीय, अरति मोहनीय, शोक मोहनीय, भय मोहनीय और जुगुप्सा मोहनीय कर्म कहते है ।

जिस कर्म के उदय से जीव को हंसना आये वह हास्य नोकषाय चारित्र मोहनीय कर्म ।

जिस कर्म के उदय से जीव को बाह्य निमित्त से अथवा निमित्त बिना सुख में रति / प्रीति / आनंद की अनुभुति हो रति नोकषाय चा. मोहनीय कर्म ।

जिस कर्म के उदय से जीव को दुःख में अरति/अप्रीति की अनुभुति होती है वह अरति नोकषाय चा. मोहनीय कर्म

जिस कर्म के उदय से जीव को शोक हो वह शोक नोकषाय चा. मोहनीय कर्म ।
जिस कर्म के उदय से जीव को डर/भय लगे वह भय नोकषाय चा. मोहनीय कर्म ।
जिस कर्म के उदय से जीव को जुगुप्सा जागे वह दुर्गंच्छा/जुगुप्सा नोकषाय चा. मोहनीय कर्म ।

ये कर्म निमित्त से अथवा बिना निमित्त भी उदय में आए ।

पुरिसित्थ - तदुभयं पइ अहिलासो जव्वसाहवइ सो - उ ।
थी - नर - नपुं वेओदओ, फुंफुंम तण नगर दाह समो ।। २२ ।।

गाथार्थ - जिस कर्म के उदय से जीव को पुरुष के प्रति, स्त्री के प्रति और उभय (स्त्री-पुरुष) दोनों के प्रति भोग भोगने की अभिलाषा होती है उन्हें अनुक्रम से स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुसंक वेद कहते हैं । ये तीनों वेद अनुक्रम से बकरी के मल की अग्नि के तुल्य, घास की अग्नि के तुल्य और नगराग्नि के तुल्य जानने चाहिये ।

१. पुरुष के साथ कामभोग की कामना उत्पन्न करावे वह स्त्री वेद मोहनीय कर्म कहलाता है । वह बकरी के मल की अग्नि जैसा है जिसे शांत होने में देर लगती है ।

२. स्त्री के साथ कामभोग की इच्छा उत्पन्न करावे उसे पुरुष वेद कहते हैं, जो घास (तृण) की अग्नि समान है जो जल्दी ही शांत हो जाता है ।

३. पुरुष एवं स्त्री दोनों के साथ काम भोग की अभिलाषा उत्पन्न होती है उसे नपुंसक वेद मोहनीय कर्म कहते है जो नगर की अग्नि के समान है जो कभी भी शांत नहीं होती ।

विजातियादि में मोह उत्पन्न करके उसे भोगने की प्रचंड इच्छा उत्पन्न करके, उसमें आनंद आनंद मानने का संवेदन उत्पन्न कर के आत्मा को मोहग्रस्त करके, उसके स्वयं के मार्ग से भ्रष्ट करके सम्यक् चारित्र को आवृत करे, नये कर्म बंधवाकर संसार बढाता है । इस प्रकार का यह वेद नोकषाय मोहनीय कर्म है ।

मोहनीय कर्म के कुल अट्ठावीस(२८) भेद हैं ।

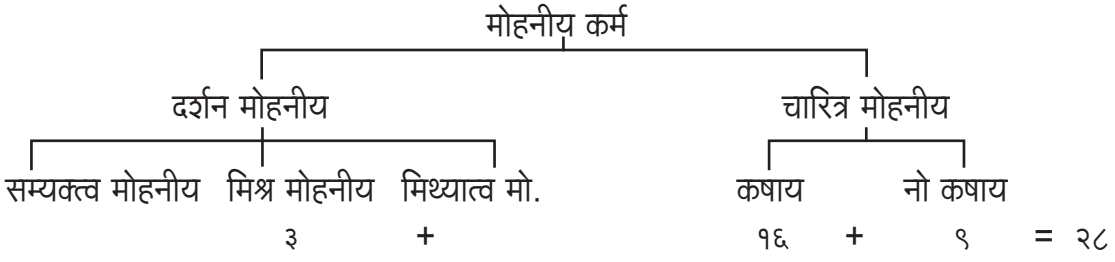

विरति वाटिका

मुझे लोभ के समुद्र में डूबना नहीं है !

भुवण क्कमण समथ्थे लोभ समुद्दे विसप्प माणांसि ।

कुणइ दिसा परिमाणं सुसवाओ सेउबंधव ।।

तीनो लोको पर आक्रमण करने में (दबाने में - भिगाने या डुबाने में) समर्थ लोभ समुद्र दुनिया के उपर फैल रहा है, उससे बचने के लिये सेतुबंध समान (मेड या पुल की तरह) उत्तम श्रावको को दिशा का परिमाण (नियमन) करना चाहिये ।

विश्व में सबसे बडे में बडा समुद्र कौनसा ? ऐसा कोई तुमको सवाल पूछे तो तुम्हारा जवाब क्या होगा ?

प्रशांत महासागर.... ?

लवण समुद्र.....? कालोदधि समुद्र.....? या क्षीर समुद्र.....?

इन सारे जवाबो को गलत ठहराते हुए ज्ञानी महात्मा कहते हैं दुनिया में लोभ समुद्र से बडा कोई समुद्र नहीं है । लोभ समुद्र इतना ज्यादा गंभीर यानि गहरा एवं चौडाई वाला है कि जिसके अंदर ये तीनों जगत क्षणभर में गुम, गायब हो जाते है, डुब जाते है । इन तीनों जगत में रहे हुए सुंदर पदार्थो की इस जीव को प्राप्ति होती है तो भी उसका अगाध लोभ समुद्र तृप्त नहीं होता है ।

लोभ मानव को असंतोषी बनाता है । असंतोष मानव को अनेक दिशाओं में द्रव्य संचय करने के निमित्त से अनियमित रुप से परिभ्रमण कराता है । धर्म के लिये अनुकूल देश एवं उत्तम धर्मिष्ठ मनुष्यों का सहवास अपेक्षित होता है, ऐसी परिस्थिति न होने पर मानव धर्म से भ्रष्ट हो जाता है ।

जिनकी दृष्टि सत्य आत्मा की ओर घूमी हुई है, ऐसे धर्मात्मा जीवो को तो लोभ को काबू में लाने के लिये तथा लंबे प्रवास या हिंसावाले व्यापार से होती हिंसा को अटकाने के लिये इस व्रत का पालन करने की खास आवश्यकता है ।

यह बाह्य दिशा प्रमाण के द्वारा मन को पूरी दनिया के विषयों में भटकने से अटकाकर, अपने स्वरुप में लाकर रखने की आंतर सूचना करने में आयी है, यह इस व्रत का गुप्त रहस्य है ।

आओ ! इस व्रत को एवं इसके अतिचारो को जान, समझ, पहचान कर अपने जीवन में स्वीकारने को तत्पर बने -

छठ्ठा दिकपरिमाण नामक प्रथम गुणव्रत, तीन प्राकर से जानना, उर्ध्वदिशाव्रत, दूसरा अधोदिशाव्रत व तीसरा तिर्छिदिशाव्रत एसे ऊंची, नीची एवं तिर्च्छी दिशा में जाने आने का नियम करते है कि अमुक दिशा में इतने मील या किलोमीटर तक मुझे जाने-आने के उपरांत जाना-आना नहीं, इसमें अनाभोगपने से या प्रमाद के प्रसंग पर जो अतिचार दोष लगते है वो पांच प्रकार के हैं , उनके नाम इस तरह से है -

प्रथम उर्ध्वदिशाप्रमाणातिक्रम यानि उर्ध्वदिशा का सौ मील या किलोमीटर प्रमाण निश्चित किया हो

उसे अनाभोगपन से अतिक्रमण कर के ज्यादा चलकर आगे जाय तो उर्ध्वदिशा प्रमाणातिक्रम अतिचार लगता है, उसी तरह दूसरा वो नीचे की दिशा के निश्चित प्रमाण से अतिक्रमण किया हो एवं तीसरा वो तिर्च्छी दिशा के प्रमाण किये गये मील का अतिक्रमण किया हो चौथा खित्तवुड्ढि यानि क्षेत्रवृद्धि नामक अतिचार जानना एवं पांचवा शंयतरद्धा यानि स्मृतिअंतर्धान जैसे कि किसी दिशा का सौ मील का प्रमाण किया हो और उस दिशा में जाते वक्त सोचे कि मैंने सौ मील का प्रमाण किया है या पचास मील का प्रमाण किया है ? इस तरह से जो शंका हो, स्पष्ट याद न आये वो पांचवा स्मृति अंतर्धान नामक अतिचार जानना ।

स्मृत्यंतदद्दो स्मृतेर्भृंश - इसमें यहां विस्मृति से सौ मील निश्चित किये प्रमाण से पचास मील ज्यादा हो तो अतिचार लगता है और सौ मील निश्चित किये प्रमाण से सौ मील ज्यादा जाय तो व्रत का भंग होता है ।

यहां उर्ध्वदिशा, अधोदिशा एवं तिर्च्छी दिशा वो चारो दिशा तथा चारो विदिशा जानना, उन दिशाओं में जाने का जितने मील का प्रमाण किया हो उसे विस्मृत कर सहसात्कारपने से उस दिशा में गये हो और निश्चित किये प्रमाण का अतिक्रमण किया हो तो तीन दिशा के तीन अतिचार जानना एवं चौथा क्षेत्रवृद्धि अतिचार - जैसे कि पूर्वदिशा में सौ मील जाने का प्रमाण किया हो और उस दिशा में डेढ सौ मील जाने का काम पडे तो तब दूसरी दक्षिण आदि दिशाओं के पचास मील उसमें जोड ले व मन में विचार करे कि पूर्व दिशा के पचास मील बढाये है तो दक्षिण दिशा के कम कर डाले है, इस प्रकार के कुविकल्प करके बाजू की दिशा की भूमि के मील कम कर के दूसरी दिशा के मील बढाये तो अतिचार लगता है एवं पांचवा स्मृतिअंतर्धान में उस दिशाव्रत का प्रमाण कर फिर विस्मृत कर दे कि अमुक दिशा में पचास मील जाने का है या सौ मील जाने का है ?

''मैं परदेश में (संख्या एवं नाम) से अधिक देशों में जाऊंगा नहीं या मैं परदेश में जाऊंगा नहीं ।'' इस व्रत में ऐसा पच्चकखाण करने का होता है ।

लिये हुए पच्चक्खाण के सुंदर पालन के लिये नीचे के नियम हमें सहायता करते है -

१) मैं अमेरिका, इंग्लैण्ड, अफ्रिका, जापान वगैरह देशों को छोडकर अन्य देशों में जाऊंगा नहीं ।

२) मैं जीवन में..... से ज्यादा बार परदेश में जाऊंगा नहीं ।

३) मैं चातुर्मास में परदेश जाऊंगा नहीं ।

४) मैं हिंदुस्तान छोडकर बाहर / परदेश जाऊंगा नहीं ।

५) मैं जीवन में ..... से ज्यादा बार विमान (हवाई जहाज) का सफर करुंगा नहीं ।

६) मैं जीवन में ..... से ज्यादा बार स्टीमर, जहाज, नाव वगैरह में सफर नहीं करुंगा ।

७) मैं चातुर्मास में तीर्थयात्रा के अतिरिक्त कहीं बाहर नहीं जाऊंगा ।

८) मैन चातुर्मास में गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, मुंबई छोडकर अन्य राज्यों में नहीं जाऊंगा ।

९) मैं उपर ..... कि.मी. से ज्यादा उपर नहीं जाऊंगा ।

१०) मैं नीचे ..... कि.मी. से ज्यादा नीचे नहीं जाऊंगा ।

११) मैं रात को ९/१०/११ बजे के बाद किसी अनिवार्य कारण के अतिरिक्त घर में से बाहर नहीं जाऊंगा ।